(1936-2009)

ध्यान पत्रिका

संस्थापक : डॉ० शम्भू नाथ

M.Sc., Ph.D.

वर्ष-22 | दिसम्बर-2012 | अंक-12

पानी का एक बिन्दू: झरने से नदी, नदी से महानदी और महानदी से समुद्र: क्यों बन जाता है? **क्यों कि वह बहता है। जीवन में कोई उपलब्धि पाने की असफलता** से निराश होकर कभी नकारात्मक सोच को हावी न होने दें; बल्कि सबक लेकर दूसरे बेहतर लक्ष्य की ओर गति ही जीवन है: **और रुकना मृत्यु।**

प्रकाशक

ध्यान सत्संग सभा

हिसार (हरियाणा), मो. : 09416164702, 09416041346

बाल विकास के लिए: ध्यान

✍ पंडित श्री विजयशंकर मेहता

आजकल परिवारों में बच्चों के सर्वांगीण विकास के लिए खूब प्रयास किये जाते हैं। लेकिन इसका मतलब यह नहीं कि उन्हें केवल भौतिक सफलता पाने के तरीके ही सिखाए जाएं। उन्हें अभी से यह सिखाया जाए कि: भविष्य में जब चारों तरफ सफलता हो, तब भीतर शांति भी कैसे बनी रहे। आज स्कूलों में पढ़ रहे बच्चे होमवर्क के दबाव के कारण: घबराए, चिड़चिड़े और डिप्रेशन (Depression) में नजर आ रहे हैं। कई योग्य, लगनशील बच्चे परीक्षा के समय अपनी शांति व चैन खो बैठते हैं। नतीजा आने तक तो उनमें आत्महत्या के विचार घुसपैठ कर चुके होते हैं। ऐसी संतानों के माता-पिता भी घबराकर अवसाद को आमन्त्रित करने लगते हैं।

इसके निवारण के लिए घरों में ध्यान के संयुक्त प्रयास किए जाएं। वैसे तो मेडिटेशन सबसे कटकर खुद के साथ रहने की कला है: लेकिन परिवारों में प्रयोग के समय इसके स्वरूप को थोड़ा बदल लेना चाहिए। सदस्य एक-दूसरे के साथ बैठकर ध्यान करें। इससे बच्चों में अरुचि व घबराहट कम होगी। ध्यान और परिवार का साथ मिलने से उनके भीतर के क्रोध व बेचैनी का निष्कासन आसानी से हो जाएगा।

बच्चों के सर्वांगीण विकास के लिए माता-पिता इस गतिविधि को ध्यानपूर्वक और ज्ञानपूर्वक परिवार के जीवन में अवश्य जोड़ लें।

(1936-2009)

जीवात्मा की परम अवस्था : परमात्मा स्वरूप चेतना

✍ डॉ० शम्भू नाथ

परमात्मा का सन्धिविच्छेद है: परम+आत्मा। अर्थात् जीवात्माओं में सर्वश्रेष्ठ। हर मनुष्य को यह ज्ञान है कि हर जीवधारी के पास एक जीवात्मा है और एक शरीर है। जीवात्मा सूक्ष्म और शरीर स्थूल है। सारी शक्तियां सूक्ष्म हैं। स्थूल बिना शक्ति के व्यर्थ है। अत: सर्वश्रेष्ठ जीवात्मा अर्थात् परमात्मा सूक्ष्मतम् स्थान में निवास करने वाला जीव है। स्पष्ट है कि परमात्मा अवतार के रूप में भले ही शरीर धारण करता है। परन्तु वह शरीरधारी नहीं है।

हर जीव का ज्ञान उसकी चेतना की अवस्था के अनुसार होता है। छोटी चेतनाओं के अनुभव में स्थूल सरलता से आ जाती है। परन्तु सृष्टि की बड़ी शक्तियां सूक्ष्म होती हैं। अत: ये बड़ी शक्तियां मात्र ऊंची चेतना प्राप्त जीवों के अनुभव में तो आ जाती हैं, परन्तु साधारण चेतना के जीवों के अनुभव में नहीं आती।

जीवात्माओं में केवल मनुष्य के शरीर में ऐसी जीवात्माओं का वास है: जो अपने में कर्म करे (अर्थात् मैडिटेशन द्वारा); अपनी चेतना बढ़ाते चले जाएं। चेतना बढ़ते-बढ़ते जीवात्मा जब परम अवस्था को प्राप्त कर लेगी, तब वह परमात्मास्वरूप चेतना कहलाएगी। इस प्रकार से स्पष्ट है कि हर मनुष्य अपने को सूक्ष्म कर्मों के माध्यम से परमात्मास्वरूप बनाने में कभी न कभी अवश्य

सफल होगा।

शरीरधारी जीव दो अस्तित्वों का बना है: शरीर और जीवात्मा। इन दोनों अस्तित्वों की दृष्टि से हर बच्चे को कभी न कभी पिता अवश्य बनना है। शारीरिक दृष्टि से मात्र आयु बढ़ने के साथ, एक समय आता है: जब बच्चों में पिता बनने के गुण शारीरिक स्तर पर आ जाते हैं; तभी समाज उन बच्चों के विवाह के विषय में सोचना शुरू करता है। शरीर स्थूल है और स्थूल ज्ञान के लिए उच्च स्तर की चेतना की आवश्यकता नहीं पड़ती।

''यथे पिण्डे तथे ब्रह्माण्डे''

शरीर के अन्दर की सूक्ष्म पर्तों को पिण्ड कहते हैं और शरीर के बाहर स्थूल क्षेत्र को ब्रह्माण्ड कहते हैं। ऊपर की कहावत का अर्थ यह है कि जो सूक्ष्म पर्तों में नहीं होता, उसका स्थूल पर्तों में होना सम्भव ही नहीं है। इस तरह स्पष्ट है कि यदि शरीरधारी जीव का शरीर समय आने पर पितास्वरूप हो जाता है, तो यह भी निश्चित है कि समय आने पर जीवात्माएं जो कि परमात्मा के बच्चे हैं; पितास्वरूप अर्थात् परमात्मा स्वरूप अवश्य हो जाएंगी। जीवन का यह ज्ञान जीवात्माओं और आत्मा से भी सम्बन्धित है।

ध्यान का अभ्यास ही: परमात्मा की भक्ति का रास्ता

आज के समाज में हर जीव को मन कहते हैं। मन को ''होनी'' की शक्ति के प्रभाव में कुछ समय नित्य रखें, जिससे होनी की शक्ति का संग उसे मिल सके। मैडिटेशन के इस अभ्यास से मन को सूक्ष्म पर्तों में ''होनी'' की शक्ति का संग मिलेगा।

इस शक्ति की प्राप्ति के लिए यह कर्म (Meditation) ही परमात्मा की भक्ति है। परमात्मा की भक्ति की आवश्यकता हर मन को है। ध्यान का अभ्यास ही परमात्मा की भक्ति का रास्ता है। मात्र इस रास्ते पर चलकर वह अपने को आत्मस्वरूप होने की ओर अग्रसर कर सकता है।

समाज में हर मनुष्य को ईश्वर की शक्ति प्राप्त करने हेतु तीन रास्ते दर्शाये जाते हैं:
(1) कर्म काण्ड (2) उपासना काण्ड और (3) ज्ञान काण्ड।

बिना कर्म के जीवन में कुछ भी सम्भव नहीं। समाज कर्मकाण्ड की साधना उन्हें कहती है: जो मात्र स्थूल कर्मों द्वारा किए जाते हैं।

कर्म केवल मन करता है। सूक्ष्म कर्म (Meditation) वे कर्म होते हैं: जिनमें मन का विचरण बिना इन्द्रियों की मदद के होता है। सृष्टि के आदिकाल को सत्युग कहते हैं। सत् परमात्मा की शक्ति, अर्थात् आन्तरिक क्षेत्र: अद्वैत का क्षेत्र है। अद्वैत के क्षेत्र का विस्तार हुआ। और इस तरह द्वैत जगत की स्थापना हुई। परन्तु कर्म: सत् के बिना असम्भव है।

सत् का भण्डार ही परमात्मा है। कर्म करने वाला मात्र परमात्मा का अंश है। महाभारत के युद्ध में एक ऐसा समय आया: जब अर्जुन और कर्ण का युद्ध शुरू हुआ। युद्ध के समय अचानक कर्ण के रथ का एक पहिया पृथ्वी में धंस गया। उसी समय श्री कृष्ण ने अर्जुन को आज्ञा दी कि तू कर्ण पर बाण चला। अर्जुन के मन में एक

संशय उठा और उसने कृष्ण से प्रश्न किया कि: क्या इस समय निहत्थे व्यक्ति पर बाण चलाना अधर्म नहीं होगा? उस समय कृष्ण ने उत्तर में कहा :-

धारण करने योग्य कर्म ही धर्म है। पूरे संसार में केवल एक मैं जानता हूं: कि धारण करने योग्य कर्म क्या है? इसलिए हे अर्जुन! तू मात्र मेरी आज्ञा का पालन कर।

प्रयासहीनता का अभ्यास ही : असली तपस्या

प्रयासहीनता के अभ्यास (ध्यान) द्वारा: कम से कम समय में, गहरा से गहरा आराम लेने में सिद्ध होकर; हम अपने मन को तपाकर निखारने में सक्षम हैं। यह सबसे बड़ी तपस्या है। मन में प्रश्न उठता है; कि बहुत दिनों तक उल्टे रास्ते पर चलने के बाद, यदि किसी व्यक्ति को मन की तपस्या का उपरोक्त असली रास्ता मिल जाता है: तब उसके जीवन के लक्षण क्या होते हैं?

जीवन में केवल दो तरह के कर्म होते हैं: प्रयासपूर्ण कर्म और प्रयासरहित कर्म। उपरोक्त साधना तो प्रयासरहित कर्मों का अभ्यास (Meditation) है। प्रयासपूर्ण कर्मों के दौरान मन और बुद्धि पर कर्मों की छाप पड़ती है, और शरीर में थकावट की उत्पत्ति होती है।

मात्र प्रयासहीन कर्म के दौरान शारीरिक थकावट और मन-बुद्धि पर पड़े छापों का निष्कासन होता है। अतः संभावनाएं दो हैं:

(1) हमारे वर्तमान जीवन में कर्म-प्रभाव का संचय हो, अर्थात् पिछले संचित कर्मों में केवल बुद्धि हो।

(2) दूसरी संभावना यह है कि वर्तमान जीवन के सारे कर्म-प्रभाव, हम अपने गहरे आराम (Meditation) द्वारा बाहर निकालने में सफल हों, और इसके साथ-साथ नित्य कुछ पिछले संचित कर्म भी निकलते रहें। इस प्रकार धीरे-धीरे, हमारे मन पर पड़े संचित कर्मों का घनापन, कम होता जाए।

मन पर पड़े छाप और मन में आत्मसत्ता के कम्बीनेशन (Combination) को ही जीवात्मा कहते हैं। यदि एक बाल्टी खाली है, तो इसका अर्थ यही होता है, कि उसमें हवा भरी है। यदि हम बाल्टी मे 'पानी डालें, तो हवा अपने आप निकल जाती है, निकालनी नहीं पड़ती। इस प्रकार जब मन में संचित कर्म बढ़ते हैं: तब मन में आत्मसत्ता अपने आप कम हो जाती है। ज्यों-ज्यों साधना द्वारा हम संचित कर्मों का घनापन कम करने में सफल होते हैं: त्यों-त्यों हमारे मन में आत्मसत्ता अपने आप पिरो जाती है। यहां पर मन की तुलना बाल्टी से की गई है, कर्म छाप की तुलना पानी से की गई, और आत्मसत्ता की तुलना हवा से की गई है।

जीवात्मा में समय बीतने के साथ संचित कर्मों का घनापन कम होना, और इसी के साथ आत्मसत्ता का बढ़ना ही, जीवात्मा का उत्थान कहलाता है। कम से कम समय में, गहरे से गहरा आराम (Relax) लेने की शक्ति, सर्वोच्च स्तर की तपस्या, साक्षात् ईश्वर की सेवा और वायुमण्डल में ब्रह्मतत्व का फैलाव है। यह साधना, पराजगत के समुद्र का गहरे से गहरा मन्थन

करने में सक्षम है। यह साधना पूर्ण आत्मोत्थान करने में भी सक्षम है।

यह जीवन मात्र कर्मों पर निर्भर करता है। शरीर में एक मन विराजमान है, जिसकी आयु अनन्त वर्ष की होती है। वर्तमान जीवन तो सीमित वर्षों का है। अत: इस जन्म के पहले के जन्मों में, हमारे द्वारा जो कर्म हुए; उनकी छाप संचित कर्मों के रूप में हमारे अन्दर है। उन से संचित कर्मों में से कुछ थोड़े से कर्म: जिन्हें हम प्रारब्ध कर्मों के नाम से पुकारते हैं, हमारे वर्तमान जीवन में दु:ख के कारण हैं। ये प्रारब्ध और संचित कर्म, हमारे सुख-दु:ख के कारण हैं। इसलिए जब तक इन प्रारब्ध और संचित कर्मों से छुटकारा नहीं पा लेते: तब तक सुख-दु:ख से परे होना असंभव है। आत्मोत्थान के रास्ते पर ज्यों-ज्यों संचित कर्मों का घनापन कम होता है: इन संचित कर्मों का निष्कासन पराजगत से क्रिया जगत की ओर होता है। क्रियाओं का जगत तो इन्द्रियों द्वारा महसूस करने का जगत है। यही कारण है कि इनके निष्कासन की अनुभूति हमारे प्रिय और अप्रिय घटनाओं के रूप में अवश्य होगी।

प्रश्न उठता है कि फिर साधक को क्या लाभ मिला?

इन संचित कर्मों के निष्कासन के साथ, हमारे आन्तरिक जगत में आत्मसत्ता: दूसरे शब्दों में मन को सर्वोच्च स्तर की संतुष्टि प्रदान करने वाली शक्ति बढ़ती है। इसका फल यह होता है: कि आत्मोत्थान के रास्ते पर प्रिय और अप्रिय घटनाओं के साथ-साथ मन पहले से ज्यादा खुश रहने लगता है, और तनावरहित भी रहने लगता है। ❑

जीव शिव है

✍ महर्षि श्री महेश योगी

जहां भगवान् ने कहा: 'निस्त्रैगुण्यो भव''- वहां उन्होंने जीवन के सहज स्वभाव के अनुसार जैसा वह है: वैसा हो जाने के लिए कहा: कुछ करने के लिए नहीं कहा क्योंकि-

''जीव: शिवो शिवो जीव:, स जीव: केवल: शिव:।''

जीव शिव है: आनन्द रूप है, सच्चिदानन्दरूप है- जीव का सहज स्वभाव सच्चिदानन्दरूप है; और बाहर की जो हलचल है: वह सच्चिदानन्द की ओर है।

भगवान् कहते हैं: 'निस्त्रैगुण्यो भव'', ''सच्चिदानन्दो भव''-कहीं से कुछ बनने-बनाने की बात नहीं है: सच्चिदानन्द तुम्हारा भीतर का स्वरूप है। सच्चिदानन्द की ओर तुम्हारा बाहर का प्रवाह है। इसलिए बाहर के प्रवाह को सच्चिदानन्द सागर में ले आओ। जैसे हो: वैसे हो जाओ। यह है, योगीश्वर का उपदेश: क्योंकि उनका योगी से सीधा सम्बन्ध है, व्यक्ति से सीधा सम्बन्ध है। जो व्यक्ति का सहज-स्वाभाविक रूप है, वह उन्होंने दिखा दिया कि यह है तुम्हारा रूप, तुम आनन्द रूप अजर-अमर हो। यह योगीश्वर के उपदेश की विशेषता है: कि उसको कुछ करना नहीं पड़ा-जैसा उसका रूप है, वैसा उसको दर्शित हो गया; वह अखण्ड पूर्ण सच्चिदानन्द है।

डाक्टर को दो काम करने पड़ते हैं। एक तो वह रोग का इलाज करता है: दवा से। और रोगी का दूसरा इलाज करता है: अच्छी बात से। भगवान् कृष्ण की पूर्ण समर्थता ने रोग के इलाज को महत्व नहीं

दिया: रोगी को उठा दिया, उसके अपने स्वरूप में उठा दिया। अपनी तरफ से कुछ नहीं किया: जैसा उसका रूप था, वह उसे दिखा दिया। उसने देख लिया: बस काम पूरा हो गया।

जैसे ही वह काम पूरा हुआ: तो ''मामेव ये प्रपद्यन्ते, मायामेतां तरन्ति ते'' (7.14) **जो मेरे शरणागत हो जाते हैं, वे इस माया-जाल को उल्लंघन कर जाते हैं, सरलता से इस भव सागर से तर जाते हैं, अर्थात् इस आवागमन से मुक्त हो जाते हैं;** सिद्ध हो गया। सारी समस्याओं के बाहर हो गया। समस्याओं की छानबीन करके, रोग की छानबीन करके, दवा देकर: रोग को नहीं निकाला। उन्होंने रोगी को ही निरोग कर दिया: बिना रोग के अनुसंधान किये।

> **कमरे में अंधेरा है: तो कैसे आया? कहां से आया? कहां की दीवार तोड़ें: कि अंधेरा निकल जाये? यह सब अंधेरे के कारणों को खोजते: अंधेरे को नहीं निकाला। केवल प्रकाश ला दिया: तब अंधेरे का कहीं पता ही नहीं चला।**

वह जो अज्ञान में रहने के कारण 15 मौलिक समस्याओं से घिरा हुआ व्यक्ति सोचता है: कि कैसे निकलूंगा? इससे निकल ही नहीं सकता। इसलिए कि जीवन ऐसा ही बना है, इसी का ही बना है।

अब क्या करना है? अर्जुन ऐसी परेशानी में पड़ा हुआ है, उससे कहा कि लो देखो: उसे प्रकाश दिया। उसकी नित्यात्म-अखण्डता का जो स्वरूप था, बता दिया: फिर उन समस्याओं का पता ही नहीं लगा। यह योगेश्वर के उपदेश का महत्व है।

जिनको ये उपदेश प्रभावित नहीं करते: उनके लिए भगवान् शंकर ने कुछ उपाय बताये हैं। योग को उपस्थित किया-वह प्रणाली, यह प्रणाली, अनेक प्रणालियां खोल कर रख दीं। इधर से चलो, उधर से चलो।

बात यह होती है, कि जिस समय ''निस्त्रैगुण्यो भव'' होता है: उस समय शरीर का यंत्र उस व्यापक चेतना को पूर्ण रूप से प्रतिबिम्बित करता है।

जहां मन भावातीत हुआ: तब मन, मन नहीं रह जाता: व्यापक सत्ता स्वरूप हो जाता है। व्यक्ति का प्राण फिर व्यक्ति का प्राण नहीं रह जाता। श्वास भी बन्द हो जाती है। व्यक्ति का शरीर भी चंचल नहीं रहता, स्थिर हो जाता है। पूर्ण निस्तब्ध और पूर्ण चेतन, ऐसी शरीर की स्थिति होती है। इसमें शरीर की एक विशेष स्थिति होती है, प्राण की एक विशेष स्थिति होती है, मन की एक विशेष स्थिति होती है:

आनन्द (Bliss) व्यापक हो जायेगा, वातावरण की एक विशेष स्थिति होती है। भगवान् शंकर ने इतने साधना के प्रकार बताये। शरीर को ऐसा साधते जाओ: तो प्राण सधता जायेगा। तब मन सूक्ष्म होता जायेगा, तब यह चेतना ज्यादा प्रतिबिम्बित होती जायेगी। उन्होंने कहा प्राण को साधो: जब प्राण सूक्ष्म होता जायेगा, तब ऐसा बैठता जायेगा। फिर मन इतना सूक्ष्म होता जायेगा। इस प्रकार साधित यह शरीर उस चेतना को प्रतिबिम्बित कर लेगा।

जितनी भी योग की प्रणालियां हैं: उनमें कुछ शरीर को लेकर हैं, कुछ प्राण को लेकर हैं, कुछ मन को लेकर हैं और कुछ वायु मण्डल को लेकर हैं।

यम-नियम का उपदेश किया: कि मनुष्य ऐसा काम करे, जो सृष्टि-पोषक प्रभाव उत्पन्न करे। एक पाये को खींचने से, जैसे तीन पाये स्वयं खिंच आते हैं: वैसे ही भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में सुधार करते-करते किसी भी क्षेत्र में अपना कार्य प्रारम्भ करेंगे: तो जीवन के सारे क्षेत्रों में अवश्य ही प्रभाव पड़ेगा; चाहे कोई प्राण से चल पड़े, शरीर से चल पड़े, चाहे मन से चल पड़े, या चाहे कोई वायुमण्डल को ठीक करता हुआ चल पड़े। ये भिन्न-भिन्न शोधन के प्रकार यौगिक साधना में भगवान् शंकर के प्रताप से प्रचलित हुए हैं।

लेकिन भगवान् कृष्ण तो पूर्ण परब्रह्म परमात्मा हैं। उनका उपदेश ऐसा है: कि आदमी को कुछ करना-कराना नहीं पड़ता।

जो लोग कुछ करते-कराते हैं: उनको कठिनाई होती है। जब ध्यान करते हैं: तो चुपचाप आराम से बैठ जाते हैं। चुपचाप बैठने में उतना आराम नहीं मिलता: जितना ध्यान में मन सूक्ष्म होने पर मिलता है। इतना ही है: कि चुपचाप बैठने में जो कष्ट होता है, उस कष्ट की निवृत्ति हम करते हैं। मन को धनुष की तरह पीछे खींच लेते हैं। अपने आप वह तीर की तरह शक्तिशाली होकर बाहर आता है। तब अपने आप व्यवहार सबल और सफल हो जाता है। सारे परमार्थ को व्यवहार में ले आने के लिए आराम से काम होता है।

''सुखेन ब्रह्मसंस्पर्श मत्यन्तं सुखमश्नुते''। (6.28): स्वरूप सिद्ध व्यक्ति परब्रह्म में एकाग्र चित्त होने के कारण असीम सुख भोगता है। जब तक इस प्रकार से मन सहज-स्वाभाविक रूप से भीतर नहीं जायेगा: तब तक सहज-स्वाभाविक रूप से

व्यवहार सबल नहीं होगा। व्यवहार करते हुए हम व्यवहार के कर्म के बन्धन में बंधे रहेंगे, तो इधर व्यवहार भी नहीं होगा और इच्छा पूर्ति भी नहीं होगी, जन्म-मरण के चक्कर में अलग बंधे रहेंगे। अत: व्यवहार में सुविधा हो, जन्म-मरण के चक्कर से भी निकल जायें, सच्चिदानन्द का भी पूरा अनुभव करें: इसी जीवन में रहते हुए।

इसके लिए उपदेश है: ''निस्त्रैगुण्यो भव''। इसी गीत के लिए भगवान् आये थे।

यह हमारी टीका और बाजार की टीकाओं में अन्तर रहा। मूल से ही अन्तर है- दृष्टि ही भिन्न है। यदि यह गीता का, कर्म-योग का, भक्ति योग और ज्ञान-योग का उपदेश ठीक से प्रचलित होता: तो आज भारत का ऐसा देदीप्यमान, जाज्वल्यमान व्यक्तित्व होता; कि वह संसार को इधर का उधर करता रहता।

अब पुनरुत्थान का समय आया है। फिर से हम अपने प्राचीन सिद्धांत की पुनरावृत्ति करेंगे। सबका आध्यात्मिक पुनरुत्थान हो जायेगा। सबके जीवन के सहज-स्वाभाविक रूप से ऐसा, कि कुछ करना नहीं पड़ेगा। परन्तु इस सिद्धांत का अधिक से अधिक लोगों के बीच में प्रचार करना है।

यह गीता का उपदेश है। इस उपदेश में चिन्तन-मनन का कोई महत्व नहीं है। आत्म-चिन्तन करो, बाह्य चिन्तन करो, जगत्-चिन्तन करो, चिन्तन में सम्पूर्ण समय खराब करके लोग बेकार हो रहे हैं।

यह शंकर का सिद्धांत है, यह वेदान्त है, यह गीता का उपदेश है-जिस दिन सब लोगों के बीच यह चीज आ जायेगी: सारा

संसार सुखी हो जायेगा। कर्म योग को समझाते-समझाते ऐसा झमेला किया है; और उसको ऐसा क्लिष्ट करके मुश्किल बना दिया है: जैसा आज-कल की टीकाओं में लिखा है। उस तरह के कर्म-योग का अभ्यास करने वाले सबके चेहरे पर फांकेमस्ती हो रही है। जीवन इतना दुर्बल हो गया है: कि न घर के रहे न बाहर के, सब गड़बड़ हो गया है। ❑

कड़वा सच

✍ श्रीमती उषा गर्ग, 1645-अर्बन एस्टेट-॥, हिसार
मो. : 89012-65520, 01662-246415

बचपन से कफन तक: बस दौड़ता है आदमी।
दौड़ते ही दौड़ते: दम तोड़ता है आदमी॥
चार रोटी, दो लंगोटी और तीन गज नंगी जमीन।
जिंदगी में तीन चीजें: बस जोड़ता है आदमी॥

इतना बड़ा सत्य जानने के बाद भी: आदमी न जाने क्यों, कब, जाने-अन्जाने: क्या-क्या कर बैठता है? आता है कुछ और करने: कर बैठता है कुछ और। भगवान् को जानने, मानने और पाने के बदले: वह खुद को भगवान् मान बैठा है। और चाहता है: कि भगवान् उसको जाने, माने और उसके दिदार करे। देखो क्या विडम्बना है? संसार के मानव की। **कभी-कभी तो मनुष्य भगवान् को न जाने क्या-क्या कह बैठता है? अपनी खुदगरजी में।** फिर इंसान-इंसान पर झूठी तोहमत लगाए: तो क्या बड़ी बात है? इंसान कमजोर, अपने दिमाग से है: तभी तो वो एहमियत भगवान की बजाए, अपनी बेकार की इच्छाओं को दे बैठता है।

अपने झूठे रिश्तों को, जब उस पर झूठी तोहमत लगती है: तो कमजोर होने के कारण तिलमिला उठता है। पर जब थोड़ा सोचता है: कि इंसान तो क्या? जब भगवान् को झूठी तोहमतों से बख्शा नहीं जाता: तो उसकी आंखें खुलती हैं; और तब अहसास करता है और कह उठता है:

न मौज उड़ाना अच्छा है, न चोटें खाना अच्छा है।
अगर हो अक्ल ऊंची: तो रब को पाना अच्छा है॥

आज लगभग सभी की जिंदगी तनावपूर्ण है। छोटे बच्चे से लेकर बड़े-बूढ़े तक शान्ति और आनन्द की चीज तो आज लुप्त हो गई है। इन सबका कारण: परमात्मा से दूरी। किसी को रास्ता नहीं मिलता; और कोई कर नहीं पाता। परन्तु परमात्मा को प्रगट किए बिना मुक्ति संभव नहीं। जो भगवान् ने बीज डाला है: वह फुटाव तो लेगा ही। आज नहीं कल: जब बीज फुटता है; तो आदमी के अन्दर भगवान् को पाने की; और मन की इच्छा होती है: तो फिर वह रास्ता तलाश करता है।

भगवान् की महिमा भी बहुत अजब-गजब है: फिर भगवान् भी उसको रास्ता दिखाने वाला भेज देता है। जिस रास्ते पर चलकर भगवान मिलते हैं: उसी को ही ध्यान का रास्ता कहते हैं।

है बड़ा सरल सहज: जिसे बच्चे से बूढ़े; सब कर सकते हैं। **क्या?** आराम ही तो करना है। बस उसमें एक संकल्प होता है दिन में तीन बार आंख बन्द करके एक बार राम का नाम लेकर बीस मिनट आराम (Relax) कर लें। जो विचार आते-जाते हैं: उनको

देखते रहें। उनमें अपने को मिलाएं नहीं। तीस मिनट बाद दो चार मिनट लेटकर आराम कर लें; बस हो गया ध्यान: और इसी से प्रकट होंगे भगवान्। है न आसान।

उम्मीद करती हूं! जो पढ़ेगा: उसी समय से आरम्भ कर देगा।

शायद यह वक्त: फिर न आएगा?

मत सोचो कि समय नहीं है, इक पल का भी फल मिलता है।
कर्म किया आज जो तुम ने; बदला इसका कल मिलता है॥
मत सोचो कि क्या जल्दी है? आज नहीं तो कल कर लेंगे।
क्या भरोसा कल का प्यारे? कल-कल करके हम मर लेंगे॥
मत सोचो मैं प्रौढ़ हो गया, जर व्याधी ने घेरा है।
ध्यान योग के अमृत जल ने, दुःखों पर पोचा फेरा है॥
मत सोचो, है सागर गहरा; कैसे पार उतर पायेंगे?
तारक मंत्र 'ध्यान योग' से, सारे काम सुधर जायेंगे॥
ध्यान योग के चपू से ही, तुरंत किनारा मिल सकता है।
धरती सम, तल शुद्ध नरम हो; बीज तुरन्त ही उग जाता है॥
ध्यान योग से शीघ्र ही, हृदय ग्रन्थी खुल जाती है।
दूर बहुत है, राह कठिन है; फिर भी मंजिल मिल जाती है॥
ऋषि, मुनि व योगी सब ने, इस पथ को अपनाया है।
इसी रास्ते चलकर, 'वस्ती' मुक्ति पद उन्होंने पाया है॥

बैंक और बाजार: अन्दर–बाहर के कर्म कार्य

प्रस्तुति : श्री गंगाधर बंसल (09416041346)

जीवन है आनन्द रूप

मनुष्य के दुखों का कारण यही है कि उसका अपने जीवन के स्त्रोत से सम्बन्ध टूट गया है। अपने अस्तित्व के इस स्त्रोत से, उसे एक पूर्ण और शान्तिमय जीवन के लिए, आवश्यक शक्ति और आनन्द प्राप्त करना चाहिए। यह सम्बन्ध पुन: स्थापित करने के लिए, गहरा ध्यान ही एक उपाय है। यह क्रिया इतनी सरल और स्वाभाविक है कि कोई भी इसका अभ्यास दैनिक जीवन में, बिना किसी कठिनाई के कर सकता है। एक बार यह युक्ति सीख लेने पर मन निश्चित रूप से, तथा अविलम्ब अपने स्त्रोत की ओर चला जाता है। एक ताजगी लिए हुए और दूसरों की सहायता करने की, कर्म करने की और दैनिक जीवन में आनन्द लेने की नयी क्षमता के साथ बाहर आता है।

भावातीत (Transcendental) ध्यान से शरीर और मन पर होने वाले प्रभावों को, वैज्ञानिक अनुसंधान, अनेक देशों के विद्वानों ने किया। जिससे प्रभावित होकर कई देशों की सरकारों ने भावातीत ध्यान और इसके सैद्धान्तिक पक्ष चेतना-विज्ञान की शिक्षा अपनी शिक्षा संस्थानों में देना आरम्भ कर दिया है।

जीवन एक दुखद संघर्ष नहीं होना चाहिए। हमें सुखी रहना चाहिए। सबके लिए अब एक ऐसी युक्ति उद्घाटित हो चुकी है, जिसमें कोई कठिन अभ्यास नहीं करना पड़ता, जिसमें अपने दैनिक

जीवन क्रम एवं परम्पराओं को छोड़ने की आवश्यकता नहीं है। जो सभी धर्मों का गहन और पूर्ण अर्थ प्रस्तुत करती है। **ध्यान:** सत्-चित्-आनन्द के क्षेत्र में (जो अपने भीतर ही है); मन की सीधी उड़ान के रूप में है। सभी देशों के लाखों लोगों ने इसकी सत्यता का अनुभव स्वयं किया है।

जीवन संघर्ष नहीं है, ना ही यह तनावपूर्ण है। जीवन आनन्द रूप है, यह अनन्त प्रज्ञ है, अनन्त अस्तित्व है। पूर्ण आनन्द की चेतना जीवन का स्वाभाविक गुण है; फिर भी किसी तरह हम इससे वंचित हो गए हैं। यथार्थ में यह अखण्ड आनन्द की चेतना, आत्मा का अपना स्वभाव है। यदि यह आत्मा का स्वभाव है: तो हम इससे वंचित कैसे रह सकते हैं? हम उससे वंचित नहीं रह सकते। आत्मा का स्वभाव, जो कि अखण्ड आनन्द की चेतना है: हमारी अपनी वस्तु है। हमारे भीतर ही सत्-चित्-आनन्द का अखण्ड स्त्रोत है। यही गौतम बुद्ध के अनुसार निर्वाण, ईसामसीह के अनुसार स्वर्ग का साम्राज्य और वेद तथा अन्य हिन्दू शास्त्रों के अनुसार आत्मानन्द है। कोई भी उससे कभी वंचित नहीं रह सकता।

जैसा चाहें बन सकते हैं हम

जीवन के आंतरिक मूल्य और बाहरी संसार का आनन्द, दोनों का समन्वय होना चाहिए। दोनों पक्ष हमारे लिए उपस्थित हैं - हम जैसा चाहें बन सकते हैं, जिसका चाहें उसका आनन्द ले सकते हैं।

हमारे समक्ष बैंक का वैभव भी है और बाजार की महत्ता भी। यदि हम सारे समय बाजार में रहेंगे, तो जेब खाली हो जायेगी। इससे तनाव उत्पन्न होगा।

आपको सारा दिन बैंक में रहने की आवश्यकता नहीं है। केवल पांच मिनट ही बैंक में रहकर, आप सम्पन्न हो जाते हैं।

केवल भीतर गोता लगायें। कुछ मिनट भीतर सत्-चित्-आनन्द के साम्राज्य में रहकर, फिर बाहरी संसार के साम्राज्य में आ जायें। दोनों का आनन्द लेना है। दोनों के अपने मूल्य हैं। बाहरी विभिन्नता के संसार का अपना मूल्य है और आन्तरिक आत्मिक क्षेत्र के अनन्त आनन्द का अपना मूल्य है। दोनों ही जीवन के दो पक्ष हैं। एक के बिना दूसरा अधूरा है।

एक सरल युक्ति है, मन को अन्तर्मुखी करने की। यह अन्तर्मुखी होना सरल और स्वाभाविक है। अधिक आनन्द के क्षेत्र में जाना, सबके लिए बिल्कुल स्वाभाविक प्रवृत्ति है। हर व्यक्ति अधिक आनन्द प्राप्त करना चाहता है। थोड़े आनन्द के क्षेत्र से अधिक आनन्द के क्षेत्र की ओर, मन सरलता से चला जाता है। क्योंकि अधिक आनन्द की इच्छा पहले से ही मन में विद्यमान है। यदि अधिक आनन्द का क्षेत्र है, और वहां जाने की कोई युक्ति है: तो मन वहां जाने के लिए उत्सुक तो है ही। वहीं अपने अन्तरतम् में आत्मा का साम्राज्य है। कोई नई इच्छा करने की आवश्यकता नहीं है। बात केवल इतनी ही है कि वह नहीं जानता: कि वह जीवन का और अधिक आनन्द उपभोग कर सकता है।

व्यावहारिक जीवन में मनुष्य बहुत थका हुआ होता है। वह एक वस्तु से दूसरी की ओर आनन्द के लिए जाता है। परन्तु जो आनन्द उसे मिलता है, वह उसके

सुख की खोज को संतुष्ट करने के लिए पर्याप्त नहीं है।

सुख की खोज को संतुष्ट करने के समान, संसार में और कोई आकर्षण नहीं है। मन अधिक; और अधिक आनन्द प्राप्त करना चाहता है। और मनुष्य की यह इच्छा करना उसका उचित अधिकार है। प्रत्येक मनुष्य को जीवन में अधिकतम आनन्द लेना चाहिए। व्यवहार क्षेत्र में भिन्न-भिन्न प्रकार के आनन्द (दृश्य, श्रवण, गन्ध और स्वाद आदि), हमारे उपभोग करने के लिए संसार में हैं। समत्व का शाश्वत जीवन हमारे भीतर है। वह सर्वव्यापी है। सभी विभिन्नताओं में समाया हुआ है; और यही जीवन हमें जीना चाहिए। अखण्ड आनन्द की चेतना हमारे भीतर है, जिसका समावेश हमारे जीवन में संसार के विभिन्न पदार्थों के अनुभवों के बीच में स्वभावत: होना चाहिए।

आनंद पाने की युक्ति – गहरा ध्यान

आनन्द को आरम्भ करने के लिए एक युक्ति है, और वह युक्ति है: गहरे ध्यान की सरल शैली। यह सरल शैली, हमारे मन को संसार के स्थूल और विभिन्न पदार्थों से सृष्टि के सूक्ष्म स्तरों की ओर ले जाकर, सूक्ष्मतम स्तर से भी आगे ले जाती है और आत्मा को दैवी अखंड आनन्द के क्षेत्र तक पहुंचा देती है। मन वहां एक बार पहुंच कर, उसके साथ तदरूप हो जाता है। यह आत्मा की स्थिति शाश्वत जीवन और विशुद्ध चेतना है। पूर्ण चेतना है।

उस सम्पर्क के बाद जब मन बाहर आता है, तो उसका कुछ गुण लेकर आता है। आत्मा का स्वभाव मन के

स्वभाव में समाहित हो जाता है। मन आत्मा का स्वभाव लेकर बाहर आता है।

वह आत्मा का जीवन, स्वाभाविक रूप से जीता है। स्वाभाविक रूप से संसार का आनंद लेता है। दोनों साथ-साथ चलते हैं। यही जीवन जीने की बात है। स्थूल स्तरों से मन खींच कर जीवन के सूक्ष्म स्तरों की ओर ले जाकर, उनका अनुभव करना, सूक्ष्म से सूक्ष्मतम और फिर आत्मा की भावातीत (Transcendental) अवस्था का शत प्रतिशत अनुभव करना। यह दैवी चेतना तब, स्मृति के क्षेत्र में नहीं रह जाती। हमें उसे स्मरण करने, या उसे पकड़ रखने की चेष्टा नहीं करना चाहिए। वह वहां स्वयं स्थिर हो गई है, क्योंकि मन में उसका समावेश हो गया है।

जैसे सफेद कपड़ा पीले रंग में डूबकर पीला होकर बाहर आता है। वह पीला रंग पक्का हो जाए, धूप में उड़ ना जाये, इसके लिए हम उसे सुखाकर तथा फिर से डुबाकर बाहर निकालते हैं; और फिर डुबाते हैं। इस प्रकार धीरे-धीरे उसका रंग पक्का हो जाता है, और फिर उड़ता नहीं है। रंग का पक्का होना ही, मन का पूर्ण होना है। जिसमें शत-प्रतिशत आध्यात्मिकता का समावेश हो जाता है।

जब वह आध्यात्मिकता बाहरी संसार के अनुभवों से प्रभावित नहीं होती, जब जीवन की वह समता संसार की विविधत से ढक नहीं जाती: तब वह भावातीत आत्मा और स्थूल संसार के अनुभव, दोनों साथ-साथ रहते हैं। तभी जीवन शत् प्रतिशत आध्यात्मिक जीवन होता है। जब ऐसा होता है: तब जीवन का उद्देश्य पूर्ण हो

जाता है। यह तुरियातीत चेतना है, जिसमें मन विशुद्ध आत्मा के गुणों को पूरी तरह लेकर, इन्द्रियों के अनुभव जन्य-संसार में वापिस आता है।

सभी अनुभव पहले की ही तरह होते हैं। परन्तु पहले की तरह आत्मा की अनभिज्ञता में नहीं होते। अब जीवन पूरा आत्म-चेतना युक्त जीवन हो गया है, जिसका मन में समावेश हो गया है। फिर जीवन में सभी अनुभव आ रहे हैं। यह अवस्था और वह: दोनों साथ-साथ मिलकर तुरीयातीत चेतना कहलाती है। यही जीवन का उद्देश्य है। ❑

ध्यान की विधि

प्रस्तुति : श्री विजय कुमार अग्रवाल

ध्यान पर बैठने के लिए: सिर्फ जागृत अवस्था में किसी भी मुद्रा में बहुत ही सुगमता से आंख मींचकर बैठना चाहिये। बैठने के प्रारम्भ में बहुत ही सुगमता से रीढ़ की हड्डी सीधी रखनी चाहिए, इसमें कोई प्रयास नहीं होना चाहिए। अगर आवश्यकता हो तो बीच-बीच में आसन भी बदला जा सकता है। अगर ध्यान के बीच में कोई बाधा आ जावे: तब उसे उलझन नहीं मानना चाहिए, बल्कि उस बाधा से निपट कर; फिर ध्यान पर बैठ जाना चाहिए। अगर दीवार से सट कर बैठना है: तब उसके बीच में कोई तकिया आदि लगा लेना चाहिए।

बच्चों को एकबार में उतने मिनट बैठना चाहिए जितने वर्ष उसकी उम्र है। युवा एवं वृद्धों को एकबार में कम से कम आधा घण्टा बैठना चाहिए और धीरे-धीरे यह समय बढ़ाकर एक बार में एक घण्टे तक या इससे भी अधिक किया जा सकता है।

प्रारम्भ में इस प्रकार बैठने से अक्सर नींद भी आ जाती है, यह ध्यान-

योग का अच्छा लक्षण है: इसका मतलब यह है कि जो अन्दर आलस्य एवं थकावट बैठी हुई है, वह उभर रही है। अत: इससे घबराना नहीं चाहिए। अच्छा हो कि 'ध्यान-योग' के बाद अगर सुविधा होवे तो कुछ क्षण के लिए विश्राम कर लें। ऐसा करने से 'ध्यान-योग' के समय जो आलस्य एवं थकान उभरती है: वह आसानी से बाहर हो जाती है, जिससे शरीर स्वस्थ होने में सुगमता हो जाती है।

यह ध्यान जब सुविधा हो: किसी भी समय, किसी भी स्थान पर, किसी भी दशा में किया जा सकता है: जैसे-बगैर नहाये, नहाकर, बगैर खाये, या अल्पाहार लेकर, घर पर, घर के बाहर, ट्रेन, बस आदि किसी भी सवारी में किया जा सकता है। सोकर उठने के बाद, तुरन्त बिस्तर पर भी किया जा सकता है। इसमें किसी प्रकार का कोई बन्धन नहीं है। सब प्रकार से बन्धन मुक्त होना चाहिए। लेकिन नंगी जमीन पर नहीं बैठना चाहिए। पूरा पेट भरकर बैठने में असुविधा रहेगी। जहां तक हो सके ध्यान के समय, किसी दूसरे का शरीर स्पर्श नहीं होना चाहिए।

ध्यान क्यों आवश्यक है ?

जब भी कोई काम किया जाता है: तो कभी उस काम में सुख मिलता है और कभी सुख नहीं मिलता: जब सुख मिलता है; तो उस सुख की वजह से उस काम में मन लगता है।

> **सुख में मन लगने को ही ध्यान लगना कहते हैं। यही ध्यान की परिभाषा (Defination) है।**

बच्चे का मन यदि खेल के सुख में लगा है: तो वह खेल में ध्यान हो गया। यदि सिनेमा के सुख में लगा है: तो वह सिनेमा का ध्यान हो गया।

सबके अन्दर एक जीवात्मा है। यह जीवात्मा भगवान की शक्ति का भण्डार है। भगवान की शक्ति जीवात्मा के क्षेत्र में निर्गुण एवं निराकार

है। लेकिन जैसे ही इस शक्ति का प्रवाह अन्दर से बाहर की ओर होने लगता है: यह शक्ति निराकार तो रहती ही है; लेकिन सगुण हो जाती है। सत्य, चित्त और आनन्द ईश्वरीय शक्ति के गुण हैं। आनन्द आंतरिक सुख है। इसलिए जब भी अन्दर की शक्ति अन्दर से बाहर की ओर प्रवाहित होगी: यह शक्ति अन्दर के सुख के रूप में प्रकट होगा।

सुख में सभी का मन लगता है: इसलिए ध्यान करते समय जब हम अकेले अंधेरे में आंख बन्द करके बैठे रहते हैं। जिस समय कि बाहर के किसी भी सुख का भोग नहीं कर रहे होते हैं, उस समय यदि अन्दर का भी सुख नहीं उभरेगा तो बैठना असम्भव हो जायेगा। यदि अन्दर का सुख उभरेगा: तो ज्यों-ज्यों अन्दर का सुख उभरेगा; मन अन्दर की ओर खिंचने लगेगा और मन बैठने में ज्यादा लगेगा। दूसरे शब्दों में, ईश्वरीय तत्व से निकलते हुए आनन्द में मन लगने की वजह से बैठना अच्छा लग रहा है। इसलिए यह ईश्वर का ध्यान कहलाएगा।

जागृति : कर्मों की देन

ज्ञान मात्र जागृति में है; और जागृति कर्मों की देन है। जिस क्षेत्र में मन विचरण करता है, उसी क्षेत्र का ज्ञान हो जाता है। मात्र मन का विचरण ही कर्म है। पूरी सृष्टि का ज्ञान चार तरह की जागृतियों में समाया हुआ है: (1) निद्रा की जागृति, (2) स्वप्न की जागृति, (3) इन्द्रिय जगत की जागृति और (4) 'होनी' के क्षेत्र की जागृति।

होनी में तो सम्पूर्ण ज्ञान है। होनी के द्वारा हो रही क्रियाओं की अनुभूति हमें इस बात का विश्वास दिला देती है, कि होनी में सृष्टि का पूर्ण ज्ञान है। अत:

> **होनी के क्षेत्र की जागृति ही: पूर्ण जागृति है, ब्रह्म की जागृति है और अखण्ड ज्ञान देने वाली जागृति है। यदि यह सत्य है,**

तो इन्द्रिय जगत की जागृति में अर्द्ध-निद्रा ही हुई।
यह सृष्टि दो भागों में बंटी है। (1) एक शरीर के अन्दर और दूसरा शरीर के बाहर। (1) एक शरीर के अन्दर: जिसे पिण्ड कहते हैं। पिण्ड में ही विशाल भावों का सागर है। सर्वशक्तिशाली निर्गुण निराकार तत्व का सागर भावातीत क्षेत्र में है। भावों के क्षेत्र में देवताओं का वास है, जो कि होनी की शक्ति के रूप में विराजमान है। होनी की शक्ति के माध्यम से शरीर के बाहर के संसार, जिसे ब्रह्माण्ड कहते हैं: की रचना और रख-रखाव करने का समर्थ है। अनन्त जीवों को सहायता करने वाले हैं।

शरीर के बाहर के क्षेत्र में आज के युग का मन अर्द्धनिद्रा में रहता है। इसीलिये कर्म उसमें मात्र गलतियां कराता है। क्योंकि पूर्ण जागृति की कमी में उसे हर समय कुछ का कुछ ही दिखायी पड़ता है। जीवन का स्पष्ट रूप न देख सकने के कारण; उसके द्वारा कर्म त्रुटियों से भरे होते हैं। यद्यपि उसकी बुद्धि इन त्रुटियों से भरे हुए कर्मों को ही सही कर्म मानती है।

बुद्धि द्वारा कर्म की मन पर छाप ही: ''अहंकार'' है।

इस प्रकार हम स्पष्ट रूप से देखने में समर्थ हैं: कि मानव के मन, और जीवन दो शक्तियों के अर्न्तगत चलता है: ''होनी की शक्ति'' और ''अहंकार'' अर्थात् बुद्धि की शक्ति।

अपने चारों तरफ के जीवन की ओर अगर हम अपना ध्यान ले जाएं तो सरलता से समझ में आता है कि अधिकतर मनुष्य तो पूर्ण रूप से बुद्धि के आधीन हो चुके हैं। अर्थात् उनका मन उनके ''अहंकार'' के अन्तर्गत प्रयास-पूर्ण कर्मों में हर समय व्यस्त है। यही संसार के दुखों का मूल कारण है। ऊपर की दो शक्तियां विपरीत दिशाओं में कार्यरत हैं। अत: हर मनुष्य का जीवन उसके 'अहंकार' और 'होनी' की शक्तियों

के बीच एक युद्ध है। इसी को सन्त तुलसीदास ने अपनी रामायण में 'राम-रावण के युद्ध' द्वारा दर्शाया है।

होनी की शक्ति राम के सत्य की ओर, अर्थात् पूर्ण ज्ञान की ओर ले जाएगी। अर्थात् पूर्ण जागृति की ओर ले जाएगी। हम फिर अपने जीवन की ओर अपना ध्यान ले जाएं: तो हमें ज्ञान हो जाएगा। कि हम नित्य रात्रि में निद्रा की ओर प्राप्त हो जाते हैं। निद्रा के समय, निद्रा की जागृति मेरे मन द्वारा 'प्रयासहीनता' के कर्म होनी करा लेती है। यह कर्म अपने में हैं। यही कारण है कि धीरे-धीरे हम अपने में जागृत होकर स्वप्न की अवस्था को प्राप्त हो जाते हैं। स्वप्न की अवस्था में भी होनी हमारे द्वारा ''प्रयासहीन'' कर्म कराती है। जिससे हम इन्द्रिय जगत की जागृति को प्राप्त हो जाते हैं। **होनी के माध्यम से अपने में कर्म ही अपने को जगाने के कर्म हैं।**
जैसे ही हम इन्द्रिय जगत की जाग को प्राप्त होते हैं: हमें ''रूलाने वाली शक्ति'' (रावण) या यह कहें: कि बुद्धि के आधीन कर्म होने वाले क्षेत्र से होकर होनी के क्षेत्र की जागृति की ओर बढ़ना पड़ता है। यही हर मानव के मन का जीवन है। रावण का संसार इन्द्रिय जगत अथवा मायावी है। इन्द्रिय जगत में अनन्त प्रकार के पांच इन्द्रियों के सुखों को देखकर मानव मन इस संसार को सुखों का मेल समझ बैठता है। अपने को जागृत करके, ''होनी के क्षेत्र की जागृति'', की ओर अग्रसर होने का रास्ता'', भूल जाता है। प्रयास-पूर्ण कर्मों द्वारा मिली हुई थकावट के कारण फिर उसी निद्रा को प्राप्त हो जाता है, जो निद्रा उसे प्रतिदिन का जीवन देती है। इस तरह उसका जीवन तीन तरह की चेतनाओं के चक्र में: जो निद्रा, स्वप्न और जागृति के नाम से जाने-माने हैं; में फंस जाता है। फलस्वरूप जागृति आगे बढ़ाने के बजाय, कम होने लगती है। यह कहें, कि दुखों की जागृति मे ंही रह जाती है, सुख की जागृति को पहुंचाती ही नहीं।

ध्यान (मैडिटेशन) का अभ्यास ही सुख की जागृति का असली मार्ग है।

ध्यान माला

✍ श्री कुबेर प्रसाद 'गुप्त कबीर'

दोहा-38: खण्ड शक्तियों में निहित, अनुचित-उचित विचार।
पर अखंड है एक बल, भले-बुरे से पार॥

सबके शरीर में एक जीवात्मा है। इसके पास केवल उत्थान अथवा पतन की ओर जाने के दो ही विकल्प हैं: क्योंकि बाह्य जगत में कुछ भी स्थिर नहीं रहता।

जीवात्मा के उत्थान के रास्ते पर जो कुछ भी होता है: वह सही ही होता है। कुछ गलत हो ही नहीं सकता, भले ही बुद्धि के स्तर अर्थात् खंड की शक्तियों के आधार पर वह गलत ही क्यों न लगे? इसी प्रकार पतन के रास्ते पर कभी भी कुछ भी ठीक नहीं होता, भले ही वह बुद्धि को तर्कसंगत और सही क्यों न लगे?

इसलिये खंड की शक्तियों में उचित और अनुचित, गलत और सही का अनिवार्य रूप से विचार करना ही पड़ता है। उत्थान के लिये एक मात्र अखण्ड की शक्ति का सहारा ही अनिवार्य है, जिसमें भले-बुरे, अनुचित-उचित का प्रश्न ही नहीं उठता। जो व्यक्ति अखण्ड की शक्ति का सहारा नहीं प्राप्त कर पाते, केवल उन्हें ही यह ध्यान रखना पड़ता है कि उनके रास्ते पर क्या अच्छा और क्या उचित है? तथा क्या बुरा और क्या अनुचित है? यह वायुमंडल अखण्ड और खण्ड की शक्तियों से भरा हुआ है। खण्ड की शक्तियां अनन्त हैं लेकिन अखण्ड की मात्र एक शक्ति है: जिसमें द्वन्द्व नहीं है।

श्रीमद्भगवद् गीता (2.70) में श्री कृष्ण के अनुसार:

सब ओर से परिपूर्ण जल निधि में सलिस जैसे सदा।
आकर समाता, किन्तु अविचल सिन्धु रहता सर्वदा॥
इस भांति ही जिसमें विषय जाकर समा जाते सभी।
वह शांति पाता है; न पाता काम-कामी जन कभी॥

जैसे नाना नदियों (खण्ड) के जल, सब ओर से परिपूर्ण अचल प्रतिष्ठा वाले समुन्द्र (अखण्ड) में उसको विचलित न करते हुए ही समा जाते हैं:

वैसे ही सब भोग (खण्ड), जिस स्थित प्रज्ञ (अखण्ड) पुरुष में किसी प्रकार का विकार उत्पन्न किए बिना ही समा जाते हैं। वही पुरुष शान्ति को प्राप्त होता है।

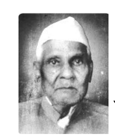

भावातीत युक्त व्यक्ति को किसी वस्तु की आवश्यकता नहीं होती। भगवान उसकी सारी आवश्यकताएं स्वयं पूरी करते रहते हैं। वह सागर के तुल्य होता है-अपने में सदैव पूर्ण। सागर में गिरने वाली नदियों के समान इच्छाएं, उसके पास आ सकती हैं; किन्तु वह अपने कार्य में स्थिर रहता है। वह इन्द्रिय तृप्ति की इच्छा से रंच भर भी विचलित नहीं होता। वह सदैव भगवान की दिव्य प्रेम भक्ति में तृप्त रहता है। वह समुन्द्र की भांति स्थिर रह कर पूर्ण शान्ति का आनन्द उठाता है। उसकी कोई भौतिक इच्छा नहीं रहती। इस लिए वह पूर्ण शान्त रहता है।

इसके विपरीत जो इच्छाओं की चेष्टा करता है: वह अशांत रहता है। पापयुक्त चोरों का समाज कभी सुखी नहीं रह सकता, क्यों कि उनका कोई जीवन लक्ष्य नहीं होता। उन्हें तो केवल इन्द्रिय तृप्ति की चिन्ता रहती है।

मन का निवास स्थान

इन्द्रिय से परे जगत में विचारों का एक सागर है। विचारों के सागर की अनुभूति हर व्यक्ति को है। सागर प्रकृति की देन है। हर सागर में लहरें अवश्य होती हैं। सागर की सतह पर लहरें अत्यंत तीव्र होती हैं

> **ज्यों-ज्यों सागर की गहराईयों में धरातल की ओर जाते हैं: त्यों-त्यों सागर की लहरें शान्त अनुभव होने लगती हैं। धरातल पर बिल्कुल शांत हो जाती हैं।**

नियमानुसार सागर-किसी शक्ति का खजाना होता है। इस शक्ति की चरम सीमा सागर के धरातल पर होती है।

विश्व ब्रह्माण्ड की सूक्ष्म पर्तों में: स्थूल पर्तों की तुलना में ज्यादा बड़ी शक्तियां व्याप्त हैं। अत: विचारों के सागर की शक्ति ही: अनन्त का रूप धारण कर लेती है। हमारे मन का निवास स्थान विचारों का सागर ही है। मनुष्य के मन को संतुष्ट करने वाला परम सुख (Bliss) और बिना प्रयास के अपनी तरह की इच्छाओं को पूर्ण करने वाली परम सुख में पिरोई हुई शक्ति, भावों के सागर के धरातल पर अत्याधिक मात्रा में है; और ऊपरी सतह पर सबसे कम है। मन भावों के सागर की मछली है। और भावों का सागर सबसे बड़ी शक्ति का खजाना है। इसीलिए मन सर्वशक्तिशाली होता है। **किसका जीवन कितना मन को संतुष्ट करने वाला होगा?** यह मात्र भावों के सागर की उन पर्तों की शक्ति पर निर्भर करेगा, जिन पर्तों में रहकर मन अपनी दिनचर्या बिताता है।

पूरे विश्व ब्रह्माण्ड को 'होनी' द्वारा चलाने की शक्ति इसी

सागर में है। मनुष्य का मन 'होनी' की शक्ति को प्राप्त करने में सक्षम है।

> **'होनी' की शक्ति को प्राप्त करने के लिए उसे नित्य कुछ समय के लिए इन्द्रिय जगत की क्रियाओं से अलग होकर: मन द्वारा भावों के सागर में प्रयासहीन (Meditation) द्वारा रहना सीख लें।**

यदि भावों के समुन्द्र की सतह प्रयास करने वाला मनुष्य का 'मैं' प्रयासहीन हो जाएगा, वह अवश्य ही डूब जाएगा और डूबने के बाद मनुष्य में अपने 'मैं' के अस्तित्व के बने रहने का प्रश्न ही नहीं उठता। **सन्त कबीरानुसार :-**

जब मैं था तब हरि नाहीं, अब हरि है मैं नाहिं।
प्रेम गली अति सांकरी, या में दोउ न समाहिं॥

अहं को अलग रखकर ही भगवत्प्रेम हो सकता है, किन्तु भगवत्प्रेम बढ़ने पर ही अहं का पूर्ण नाश होगा। ऐसे क्षणों में मनुष्य के 'मैं' और परमात्मा के तत्व का योग हो जाने के कारण योग में भाग लेने वाले तत्वों के रूप का विलय हो जाता है; और इन्हीं क्षणों में सच्चिदानन्द ब्रह्मतत्व 'मैं' में पिरोकर 'मैं' ही जागृति बढ़ाने लगता है। बार-बार ऐसा योग होने से 'मैं' को धीरे-धीरे प्रकृति की सबसे बड़ी शक्ति का ज्ञान होने लगता है। अर्थात् वह उसे जानने लगता है।

धीरे-धीरे 'जानत तुमहिं-तुमहिं हो जाई'

के कथन की सत्यता अनुभव में आने लगती है। श्रीमद्भगवद्गीता के अध्याय 2 श्लोक 50 में श्री कृष्णानुसार:

जो बुद्धि-युत है, पाप-पुण्यों में न पड़ता है कभी।
बन योग-युत, है योग ही यह कर्म में कौशल सभी॥

सम बुद्धि युक्त पुरुष पुण्य और पाप दोनों को इसी लोक में त्याग देता है, अर्थात् इन से मुक्त हो जाता है। इस से तू समत्व रूप योग (भावातीत ध्यान योग), में लग जा; यह समत्व योग (Transcendental Meditation), ही कर्मों में कुशलता है अर्थात् कर्म बन्धन से छूटने का उपाय है (2.50)

जीवात्मा अनादिकाल से अपने अच्छे तथा बुरे कर्म के फलों को संचित करता रहा है। फलत: वह निरन्तर अपने स्वरूप से अनभिज्ञ बना रहा है। इस अज्ञान (Ignorance) को 'योग: कर्मसु कौशलम्' (2.50), के उपदेश से दूर किया जा सकता है। यह हमें पूर्ण रूप से 'भावातीत' होने तथा जन्म-जन्मान्तर कर्म फल की श्रृंखला का शिकार बनने से मुक्त होने में सामर्थ्य है। कर्म फल के शुद्ध होने की यही प्रक्रिया है। भक्ति में संलग्न मनुष्य इस जीवन में ही अच्छे तथा बुरे कार्यों से अपने को मुक्त कर लेता है। अत: ध्यान योग के लिए प्रयत्न करो, क्योंकि सारा कार्य कौशल यही है। **तात्पर्य यह है कि जीवात्मा अनादि काल से अपने अच्छे तथा बुरे कर्मों के फल को संचित करता रहा है।** फलत: वह निरन्तर अपने स्वरूप से अज्ञ बना रहा है। अज्ञान को भगवद्गीता के इस उपदेश से दूर किया जा सकता है। **यह हमें पूर्ण रूप में भगवान श्रीकृष्ण की शरण में जाने तथा जन्म-जन्मान्तर में कर्म-फल की श्रृंखला का शिाकर बनने से मुक्त होने का उपदेश देती है। अत: अर्जुन को कृष्णभावना में कार्य करने के लिए कहा गया है। क्योंकि कर्म बन्धन के शुद्ध होने की यही एक प्रक्रिया है।** ❑

नोट : 1. ध्यान पत्रिका का वार्षिक शुल्क 20/- (बीस) रुपये मनी-आर्डर अथवा कैश : अपने Address एवं Contact No. सहित इस पते पर भेजें :-

–Sh. Rakesh Garg, Keshav Lace Emporium,
Shop No. 91, Lajpat Rai (Rehri) Market, Hisar-125001
Mobile : 098967-89678

2. प्रत्येक रविवार को बुधला सन्त मन्दिर, नज़दीक बस स्टैण्ड, हिसार में पारिवारिक ध्यान सत्संग शाम को 4 बजे से 6 बजे तक होता है। आप सभी सपरिवार सादर आमन्त्रित हैं।

3. ध्यान (Meditation or Self Realization) सम्बन्धी अपने अनुभव, लेख, आलोचना (Comments), अनुभूतियां, प्रश्नोत्तर, शंका-समाधान इत्यादि इस पते पर भेज सकते हैं :-

–सुरेश कुमार गुप्ता
1618, अर्बन एस्टेट-II,
पुष्पा कम्पलैक्स के पीछे, हिसार-125005

PRINTED MATTER